भगवान बुद्ध के अग्रउपासक

अनाथपिण्डिक

(दायकों में "अग्र")

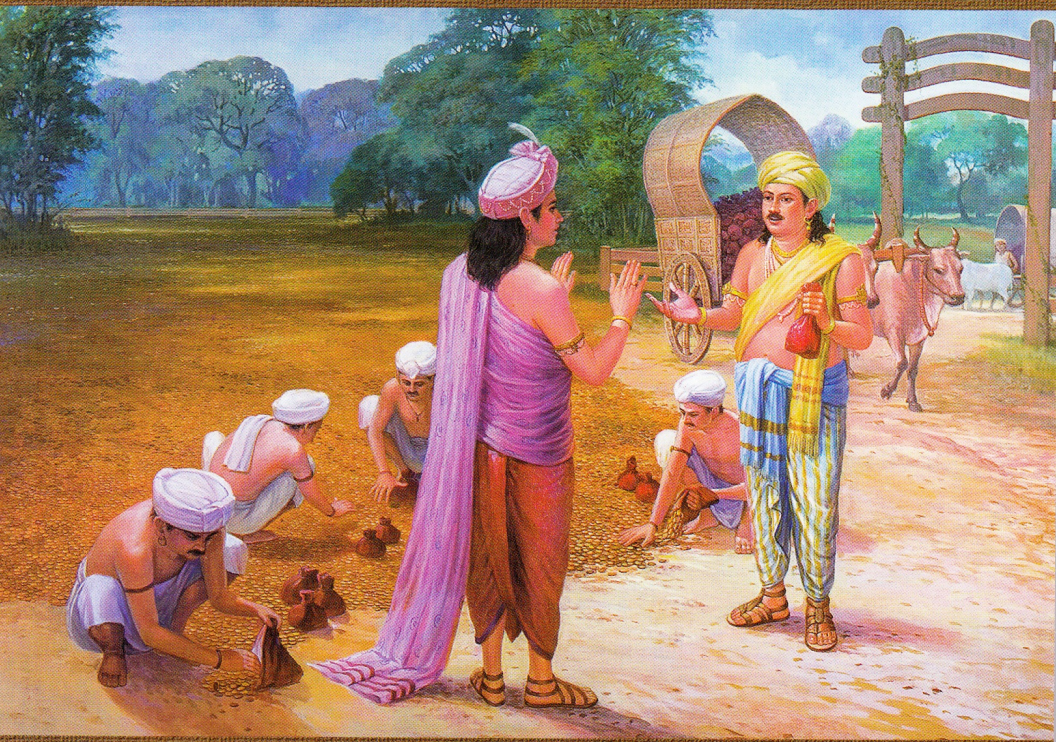

विपश्यना विशोधन विन्यास

भगवान बुद्ध के अग्रउपासक

अनाथपिण्डिक

(दायकों में "अग्र")

विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी

अनाथपिण्डिक

पुस्तक कोडः **H56**

© विपश्यना विशोधन विन्यास
सर्वाधिकार सुरक्षित

आवरण पृष्ठः ग्लोबल विपश्यना पगोडा के आर्ट गैलरी से लिया गया है।

प्रथम संस्करण : २०१०
पुनर्मुद्रण : २०१२, जुलाई २०१६, दिसंबर २०२४

मूल्य : रु.
Price: Rs.

ISBN 978-81-7414-314-3

प्रकाशक:
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२४०३
जिला- नाशिक, महाराष्ट्र
फोन: ०२५५३-२४४९९८, २४३५५३, २४४०७६
२४४०८६, २४४१४४, २४४४४०
Email: vri_admin@vridhamma.org
Website: www.vridhamma.org

मुद्रक:
अपोलो प्रिंटिंग प्रेस
२५९, सीकॉफ लिमिटेड, ६९ एम. आय. डी. सी.
सातपुर, नाशिक-४२२००७, महाराष्ट्र

भगवान बुद्ध की उद्‌घोषणा

"एतदग्गं, भिक्खवे, मम सावकानं उपासकानं दायकानं
यदिदं सुदत्तो गहपति अनाथपिण्डिको।"

"भिक्षुओ मेरे उपासक श्रावकों में ये अग्र हैं - दायकों में
'अनाथपिण्डिक सुदत्त गृहपति'।"

–अङ्गुत्तरनिकाय १.१.२४९

भगवान बुद्ध के अग्रउपासक

अनाथपिण्डिक

भगवान बुद्ध के अग्रउपासक

अनाथपिण्डिक

विषयानुक्रमणिका

प्रकाशकीय [vii]

कोशल का भाग्य जागा १

जन्म तथा नामकरण १
बुद्ध-दर्शन १
धर्म-दर्शन ६
संघ-दर्शन १३
दान-चेतना १७
अनर्घ-दान २५
कोशल का भाग्य जागा ३१
आनन्दबोधि ३२

ऐसा पुनीत परिवार ३५

भार्या एवं बेटी महासुभद्दा ३५
सोतापन्न चुल्लसुभद्दा ३५
सकदागामी सुमनदेवी ३९
ऐसे सिखाया धर्म ४१
"दासी-समान" भार्या ४३
दासी पुण्णा का समर्पण ४८
मित्र-धर्म की रक्षा ४९
बुद्धिमती सुलसा ५०
ऐसे हुआ देवता ५१
स्थविर दासक ५३

रत्न माने त्रिरत्न ५५

भोजन-दान में स्नेह-विश्वास ५५
वस्तु नहीं, भाव प्रमुख ५७

अनुपम श्रद्धा ६०
श्रेष्ठी की श्रेष्ठता ६२

गृहस्थ-धर्म ६५

सन्मार्गी गृहस्थ ६५
गृहस्थ के सुख ६६
चार प्रकार की संपत्ति ६७
निर्लिप्त कामभोगी ७१
भोजन-दान की महत्ता ७१
पाँच प्रकार के भय ७२
पाँच वैर-भय की शांति ७३
एकांत प्रीति-सुख ७५

अन्य प्रसंग ७७

दासी रोहिणी ७७
शराबी ठग ७७
रख न सका कामद घट ७९
विवेकहीन भिक्षु ८१

धर्मपंथ ही पंथ है ८३

संत जनम जग मंगल हेतु ८३
चित्तेन संवरो साधु ८४
सम्यक दृष्टि ८५
पहले जानो तब मानो ८८
भोजन-दान फलीभूत हुआ ९१
धर्म सदा रक्षा करे ९२
अनाथपिण्डिक की मृत्यु ९५
जेतवन के अवशेष ९७
सद्धर्म की पुनर्स्थापना ९९

विपश्यना साधना के केंद्र १००

प्रकाशकीय

सावत्थी (श्रावस्ती) से अपनी ससुराल राजगह (राजगीर, राजगृह) आये हुए अनाथपिण्डिक ने जब सुना कि संसार में बुद्ध उत्पन्न हुए हैं और कल उसके साले के घर भोजन के लिए पधार रहे हैं तब वह भगवान के दर्शन के लिए अधीर हो उठा। सुबह पौ फटने के पहले ही चल पड़ा और नगर के बाहर जिस शीतवन में भगवान ठहरे हुए थे, वहां पहुँच गया।

भगवान ने उसे नाम लेकर बुलाया - 'आओ, सुदत्त!'

भगवान मेरा नाम लेकर मुझे बुला रहे हैं। इसी से हर्ष-विभोर हो उठा। भगवान ने अनाथपिण्डिक को धर्मकथा कही, जिसे सुनकर उसका मन शांत, प्रसन्न और निर्मल हुआ।

अपनी पूर्व पुण्यपारमी के कारण भगवान की वाणी सुनते-सुनते उसके भीतर अनित्यबोध जागा और वह पृथग्जन से स्रोतापन्न हुआ। भाव-विभोर होकर उसने भगवान को दूसरे दिन भोजन के लिए आमंत्रित किया। भगवान ने मौन रह कर स्वीकार किया।

दूसरे दिन भोजन ग्रहण कर भगवान ने धर्मोपदेश दिया, तब अनाथपिण्डिक ने भगवान से करबद्ध प्रार्थना की - 'भंते भगवान, भिक्षु-संघ के साथ अगला वर्षावास सावत्थी में स्वीकार करें।'

भगवान ने स्वीकारते हुए कहा - "हे गृहपति, तथागत शून्यागार, यानी एकांत में रहना पसंद करते हैं।"

अनाथपिण्डिक प्रफुल्लित हो कह उठा - "जान गया भगवान ! समझ गया सुगत!"

और सावत्थी पहुँच कर भगवान के विहार के लिए उपयुक्त स्थान की खोज करने में लग गया। स्थान ऐसा हो जो कि नगर से न अति दूर हो, न अति समीप। जहां लोगों के आ सकने की सुगमता हो। जहां न दिन में बहुत भीड़-भाड़ हो, न रात में बहुत हल्ला-गुल्ला। जो ध्यान के अनुकूल हो।

खोजते-खोजते उसे जेत राजकुमार का उद्यान अनुकूल लगा। इसे खरीदने के लिए वह जेत राजकुमार के पास गया। राजकुमार अपना उद्यान नहीं बेचना चाहता था। टालने के लिए उसकी कीमत कोटि-सन्थर बता दी।

अनाथपिण्डिक ने उसकी जुबान पकड़ ली और तत्क्षण सौदा पक्का कर लिया। कोटि-सन्थर का अर्थ था – करोड़ों का बिछावन। यानी सारी भूमि पर एक किनारे से दूसरे किनारे तक सोने के सिक्कों को बिछाना था। अनाथपिण्डिक ने यही किया। गाड़ियों में सोना भर-भर कर लाया और उसे उद्यान की सारी भूमि पर बिछाना शुरू कर दिया।

जहां भगवान लोगों को धर्म सिखायेंगे उस तपोभूमि की कोई कीमत नहीं आंकी जा सकती। वह अत्यंत प्रसन्न चित्त से जेतवन को सोने की मोहरों से ढंके जा रहा था।

राजकुमार यह सब देख कर भौचक्का रह गया। जमीन का एक कोना अभी बचा था जहां सोना बिछाया जाना था। अनाथपिण्डिक ने गाड़ियों से और सोना लाने का आदेश दिया परंतु जेत राजकुमार ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा – "बस कर, गृहपति ! इस खाली जमीन पर स्वर्ण मत बिछा। यह मुझे दे, यह मेरा दान हो।" अनाथपिण्डिक ने स्वीकार किया।

अनाथपिण्डिक ने उस बहुमूल्य धरती पर विहार, कोठे, सभागृह बनवाये; पानी गर्म करने के लिए अग्निशालाएं बनवायीं भंडारगृह, पेशाब-पाखाने के स्थान, खुले चंक्रमण, चंक्रमण शालाएं, पानीघर, प्याऊ, स्नानागार बनवाये; पुष्करणियां और मंडप बनवाये, जिससे कि हजारों भिक्षु और साधक भगवान के सान्निध्य में सुविधापूर्वक रहकर ध्यान कर सकें। भगवान के इस परम श्रद्धालु, गृहस्थ शिष्य ने दान के इतिहास में एक अतुलनीय समुज्ज्वल कीर्तिमान स्थापित किया। भगवान ने उसे दान के क्षेत्र में अग्र की उपाधि दी।